International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2024; 1(3): 37-39
© 2024 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 16-08-2024
Accepted: 29-08-2024
Publish : 30-08-2024

डॉ सुरेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत),
भगवान परशुराम महाविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

Correspondence:
डॉ सुरेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत),
भगवान परशुराम महाविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का स्वरूप

डॉ सुरेश कुमार

"यज्ञ" शब्द की व्युत्पत्ति मूलतः तीन धातुओं से मानी जाती है: यज् (देवपूजा, सङ्गतिकरण, दान) देवताओं की पूजा, उनसे संपर्क साधना और देना। यज् (दिव्यकरण) किसी वस्तु को दिव्य बनाना। इज् (गति) एक सूक्ष्म और दिव्य गति, ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया।

यज्ञो वै यज्ञः संस्कारो यजुरित्याहुरकारणम् ।

यज् दाने, यज् देवपूजायां, यज् संगतिकर्मणि, यज् इज्यायाम् इति चतस्रो धातवो यज्ञशब्दस्य ॥[1]

इस प्रकार, यज्ञ का शाब्दिक अर्थ हुआ एक ऐसी दिव्य प्रक्रिया जिसमें देवताओं की पूजा और उनसे संपर्क के लिए कुछ अर्पित किया जाता है, और जो एक ऊर्ध्वगामी गति या परिवर्तन लाती है। लेकिन शतपथ, अर्थात ज्ञान और सत्य का मार्ग, और ब्राह्मण, अर्थात वह परम सत्ता जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है, उसमें स्थित होकर जब हम यज्ञ के स्वरूप को देखते हैं, तो यह भौतिक अग्नि-कुंड और हवन सामग्री से ऊपर उठकर एक सार्वभौमिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक सिद्धांत बन जाता है। यहाँ यज्ञ जीवन की हर क्रिया, ब्रह्माण्ड की हर गति और चेतना के हर स्पंदन का प्रतीक है।

वैदिक आधार - नासदीय सूक्त और विराट पुरुष का यज्ञ

शतपथ में यज्ञ के स्वरूप को समझने के लिए हमें सबसे पहले ऋग्वेद के सबसे गहन दार्शनिक सूक्त, से शुरुआत करनी चाहिए। यह सूक्त सृष्टि के उस आदि-क्षण का वर्णन करता है जब कुछ भी नहीं था, केवल एक तैवीर्ण सत्ता (तदेकम) थी।

नासदासीन नो सदासीत तदानीं नासीद रजो नो व्योमा परो यत् |
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद गहनं गभीरम् ||[2]

उस (सृष्टि से पूर्व) समय न तो असत् था, न सत् था। न तो वायुमंडल था, न उसके ऊपर का आकाश। क्या छिपा हुआ था, कहाँ, किसके आश्रय में ? क्या गहन और गभीर जल था? यह मंत्र उस परम ब्रह्म की अवस्था को दर्शाता है जो सभी द्वंद्वों और परिभाषाओं से परे है। यहीं से यज्ञ का आदि-बीज निहित है – इस "कुछ न होने" से "कुछ होने" की प्रक्रिया ही प्रथम और परम यज्ञ है। यह ब्रह्म का स्वयं को अभिव्यक्त करने का यज्ञ है।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए, पुरुष सूक्त में इस यज्ञ का स्पष्ट और साकार चित्रण मिलता है। यह सूक्त विराट पुरुष, एक विशालकाय, के यज्ञ में उसके स्वयं के अंगों की आहुति का वर्णन करता है। यह ब्रह्माण्डीय यज्ञ का सबसे प्रत्यक्ष और मूर्त उदाहरण है

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः |
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ||[3]

उसी (परम पुरुष) से विराट (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ और विराट से पुरुष। जन्म लेते ही वह (पुरुष) पृथ्वी के आगे और पीछे (अर्थात सर्वत्र) व्याप्त हो गया।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत |

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ||[4]

देवताओं ने पुरुषरूपी हवि (आहुति) से यज्ञ का अनुष्ठान किया। वसन्त ऋतु उसकी आज्य (घृत), ग्रीष्म ऋतु इधन (समिधा) और शरद ऋतु हवि (आहुति) थी।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् |

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ||[5]

देवताओं ने यज्ञरूपी यज्ञ का यजन (अनुष्ठान) किया। ये ही प्रथम धर्म (नियम) थे। उस यज्ञ के महिमामंडित (फल) स्वर्ग (नाक) में रहते हैं, जहाँ आदि देवता (साध्य) निवास करते हैं।

यहाँ "यज्ञेन यज्ञमयजन्त" का अर्थ गहरा है। यह दर्शाता है कि यज्ञ ही यज्ञ का स्वरूप है, यज्ञ ही यज्ञ का उद्देश्य है, और यज्ञ ही यज्ञ का कर्ता है। यह एक स्व-संदर्भित, स्व-पोषित ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया है। ब्रह्म (विराट पुरुष) स्वयं को यज्ञरूप में व्यक्त करता है और फिर उसी यज्ञ में स्वयं की आहुति दे देता है। इससे समस्त सृष्टि – देवता, मनुष्य, पशु, वेद, छंद, सब कुछ – प्रकट होता है। यह सत्पथ ब्राह्मण में यज्ञ का सर्वोच्च और आदि स्वरूप है।

उपनिषदों में यज्ञ का अद्वैतिक रूपांतरण

उपनिषदों ने इस वैदिक यज्ञ-अवधारणा को एक गुणात्मक छलांग दी। यहाँ यज्ञ बाह्य कर्मकांड से हटकर आंतरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया बन गया।

1. प्राणाग्निहोत्र : श्वास-प्रश्वास का निरंतर यज्ञ

छान्दोग्य उपनिषद) में महर्षि उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को "पंचमहायज्ञ" का जो रहस्य बताते हैं, उसमें सबसे पहला और सर्वोच्च यज्ञ "प्राणाग्निहोत्र" है। यह मानव शरीर में होने वाला निरंतर यज्ञ है।

अथ यद्यजुष्टेजोऽन्नाद्यमुदकमिति होत्रास्ता अस्य होत्रा अग्निषु प्रतितिष्ठन्ति... स यः एतानि पञ्चयज्ञान् वेद... सर्वं तेन कृतं भवति[6]

जो व्यक्ति इन पांच महायज्ञों (जिनमें प्राणाग्निहोत्र प्रमुख है) को जानता है, उसके द्वारा सब कुछ किया हुआ हो जाता है। प्राणाग्निहोत्र का सिद्धांत है कि जिस प्रकार अग्नि में आहुति दी जाती है, उसी प्रकार प्राण (श्वास) और अपान (प्रश्वास) रूपी अग्नि में भोजन, जल आदि की आहुति दी जाती है। यह शरीर-रूपी यज्ञशाला में चलने वाला अनवरत यज्ञ है। सत्पथ का साधक इसी आंतरिक यज्ञ को पहचानता है।

2. आत्मयज्ञ : आत्मा में आत्मा का समर्पण

कठोपनिषद और अन्य उपनिषदों में बाह्य यज्ञों को "अपरा विद्या" कहा गया है, जबकि "परा विद्या" है आत्मज्ञान। वास्तविक यज्ञ वह है जहाँ इन्द्रियों को वश में करके, मन को एकाग्र करके, आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार किया जाए।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन |

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ||[7]

यह आत्मा न तो केवल उपदेश से, न बुद्धि से, न अधिक सुनने से प्राप्त होती है। जिसे यह आत्मा स्वयं चुनती है, उसी के द्वारा वह प्राप्त होती है, और उसके लिए यह आत्मा अपना स्वरूप प्रकट करती है। यहाँ, यज्ञ का स्वरूप "चयन" और "समर्पण" का है। साधक का समस्त बाह्य आचरण और आंतरिक प्रयत्न एक यज्ञ बन जाता है, जिसका लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है।

ईशावास्योपनिषद: कर्म की अग्नि में आसक्ति की आहुति

ईशावास्योपनिषद का प्रथम मंत्र ही सत्पथ में यज्ञ के स्वरूप को पुनर्परिभाषित करता है।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् |

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ||[8]

यह सम्पूर्ण जगत परमेश्वर से आवृत है। इसलिए, त्याग के द्वारा इसका भोग करो, किसी के धन का लोभ मत करो।यह "त्याग" ही वास्तविक यज्ञ है। जीवन के प्रत्येक कर्म को, अपने फल की आसक्ति को त्यागकर (यज्ञ में आहुति की तरह), परमात्मा को अर्पित कर देना ही सत्पथ का यज्ञ है। यह गीता में कर्मयोग का आधार बनेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता - यज्ञ का समन्वयात्मक स्वरूप

गीता यज्ञ की अवधारणा का सबसे सुव्यवस्थित और व्यावहारिक विवरण प्रस्तुत करती है। भगवान कृष्ण अर्जुन को सिखाते हैं कि कैसे जीवन की हर क्रिया को यज्ञ बनाया जा सकता है।

1. प्रजापति का यज्ञ: सृष्टि का चक्र

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः |

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ||[9]

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः |

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ||[10]

प्रजापति (ब्रह्मा) ने सृष्टि के आदि में प्रजाओं की रचना करके यज्ञ सहित कहा — 'इस (यज्ञ) के द्वारा तुम लोगों की वृद्धि हो, यह तुम्हारे लिए कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु (गाय) के समान हो।' 'तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं का पोषण करो और देवता तुम्हारा पोषण करें। इस प्रकार एक-दूसरे का पोषण करते हुए तुम परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।' यहाँ यज्ञ एक पारस्परिक पोषण का चक्र है। मनुष्य यज्ञ द्वारा देवताओं (प्रकृति की शक्तियों) को पोषित करते हैं, और देवता वर्षा, अन्न, ऋतुचक्र आदि द्वारा मनुष्यों का पोषण करते हैं। यह सत्पथ का एक सामाजिक और पारिस्थितिकीय आयाम है।

ज्ञानयज्ञ : सर्वश्रेष्ठ यज्ञ

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप |

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ||[11]

हे परंतप अर्जुन, द्रव्यमय यज्ञ (भौतिक सामग्री वाला यज्ञ) से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। हे पार्थ, समस्त कर्मों का परिपाक (पूर्णता) ज्ञान में ही होता है। यह गीता का केंद्रीय सिद्धांत है। जब तक यज्ञ एक बाह्य कर्म है, तब तक वह सीमित है। सत्पथ का लक्ष्य है उस यज्ञ के पीछे के ज्ञान को, उसके रहस्य को समझना। वह रहस्य है – सब कुछ ब्रह्म है, और सब कुछ ब्रह्म के लिए है।

3. सर्वकर्म का यज्ञ में समर्पण

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् |

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ||[12]

हे कौन्तेय, तू जो कुछ करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ यज्ञ में आहुति देता है, जो कुछ दान करता है और जो कुछ तपस्या करता है, सब कुछ मुझे अर्पण कर।यह मंत्र सत्पथ ब्राह्मण में यज्ञ के स्वरूप का सारतम सूत्र है। यहाँ यज्ञ एक विशिष्ट अनुष्ठान न रहकर जीवन की हर सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल क्रिया का दिव्यीकरण बन जाता है। भोजन, निद्रा, जागरण, कार्य, विश्राम – सब कुछ परमात्मा को अर्पित होने वाली आहुति है। यही "कर्मण्येवा-धिकारस्ते" का वास्तविक अर्थ है।

तंत्र और अध्यात्म में यज्ञ का सूक्ष्म स्वरूप सत्पथ के अगले चरण में यज्ञ शरीर के भीतर की सूक्ष्म ऊर्जाओं के स्तर पर प्रतिष्ठित होता है।

1. कुण्डलिनी यज्ञ : यह आध्यात्मिक यज्ञ है जहाँ साधक अपनी इड़ा और पिंगला नाड़ियों (सूर्य और चंद्र शक्तियों) के मध्य स्थित सुषुम्ना नाड़ी (अग्नि पथ) में ज्ञान और तप की समिधा से, प्राण की आहुति देकर, मूलाधार चक्र में सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करता है और उसे ऊर्ध्वगामी करता है। इस यज्ञ का फल है सहस्रार चक्र में शिव-शक्ति का मिलन, जो मोक्ष रूपी अमृत की प्राप्ति है। यह यज्ञ सबसे कठिन और सबसे गोपनीय माना गया है।

2. मनोयज्ञ : इस यज्ञ में विचारों, भावनाओं और वासनाओं की आहुति दी जाती है। जब साधक नकारात्मक विचार (काम, क्रोध, लोभ, मोह) को बुद्धि रूपी अग्नि में जलाकर सकारात्मक विचार (प्रेम, करुणा, क्षमा, शांति) में परिवर्तित करता है, तो यह मनोयज्ञ होता है। इसकी अग्नि है "विवेक" और आहुति है "वैराग्य"।

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का समग्र स्वरूप - एक सारांश

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का स्वरूप एक बहुआयामी, बहुस्तरीय वास्तविकता है:

1. ब्रह्माण्डीय स्तर : यह ब्रह्म का स्वयं को सृष्टि रूप में व्यक्त करने और उसमें लीन होने की निरंतर प्रक्रिया है। विराट पुरुष का यज्ञ इसका प्रतीक है।
2. सामाजिक स्तर : यह पंचमहायज्ञ (देव, ऋषि, पितृ, मनुष्य, भूत यज्ञ) के रूप में प्रकट होता है, जहाँ व्यक्ति समाज और प्रकृति के प्रति अपना ऋण चुकाता है।
3. शारीरिक स्तर : यह प्राणाग्निहोत्र है, जहाँ श्वास-प्रश्वास और पाचन की प्रक्रियाएँ एक निरंतर यज्ञ हैं।
4. मानसिक स्तर : यह मनोयज्ञ है, जहाँ विचारों और वृत्तियों का शुद्धिकरण होता है।
5. आध्यात्मिक स्तर : यह ज्ञानयज्ञ और आत्मयज्ञ है, जहाँ अहंकार की आहुति देकर आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार किया जाता है।
6. दैनिक जीवन का स्तर : यह गीता का "मदर्पण" भाव है, जहाँ जीवन का हर कर्म, चाहे वह कितना ही सांसारिक क्यों न हो, भगवान को अर्पित कर दिया जाता है।

निष्कर्ष

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ का स्वरूप अंततः **एकता का स्वरूप** है। यह वह प्रक्रिया है जो व्यष्टि को समष्टि से, जीव को ब्रह्म से, और मानव को समस्त सृष्टि से जोड़ती है। यह केवल मंत्रोच्चार और हवन सामग्री तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन का मूल सत्य है। जो साधक इस सत्य को पहचान लेता है, उसके लिए उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना-जागना, काम करना-विश्राम करना, सब कुछ यज्ञ बन जाता है। उसकी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा ही एक महायज्ञ हो जाती है, जिसकी अग्नि है "ज्ञान", समिधा है "तप", आहुति है "आसक्ति-रहित कर्म", और फल है "ब्रह्म से पुनर्मिलन" – मोक्ष।

यज्ञोऽयं सदैव प्रवर्तते। अहं च त्वं च अस्मिन् एव यज्ञे अङ्गम्।[13]
(यह यज्ञ सदैव चल रहा है। मैं और तुम, हम सभी इसी यज्ञ का एक अंग हैं।)

संदर्भ-सूची –

1. निरुक्त 3.19
2. ऋग्वेद 10.129.1
3. ऋग्वेद 10.90.6-7, 16
4. ऋग्वेद 10.90.6
5. ऋग्वेद 1.164.40
6. छान्दोग्य उपनिषद 5.19.1
7. कठोपनिषद 1.2.18
8. शुक्ल यजुर्वेद 40.1
9. भगवद्गीता 3.10
10. भगवद्गीता 3.11
11. भगवद्गीता 4.33
12. भगवद्गीता 9.27
13. ऋग्वेद 10.90